आनन्दकी लहरें

हनुमानप्रसाद पोद्दार

मुद्रक तथा प्रकाशक
घनश्यामदास
गीताप्रेस, गोरखपुर।

संवत् १९८८
प्रथम संस्करण ५२५०
मूल्य ≈)॥ डेढ़ आना

मिलनेका पता—गीताप्रेस, गोरखपुर

आनन्दकी लहरें

गोपीकुमार

नवजलधरवर्णं चम्पकोद्भासिकर्णं,
विकसितनलिनास्यं विस्फुरन्मन्दहास्यम् ।
कनकरुचिदुकूलं चारु वर्हावचूलं,
कमपि निखिलसारं नौमि गोपीकुमारम् ॥

ॐ

आनन्दकी लहरें !

'पुत्र, स्त्री और धनसे सच्ची तृप्ति नहीं हो सकती । यदि होती तो अबतक किसी-न-किसी योनिमें हो ही जाती, सच्ची तृप्तिका विषय है, केवल एक परमात्मा, जिसके मिल जानेपर जीव सदाके लिये तृप्त हो जाता है ।'

'दुःख मनुष्यत्वके विकासका साधन है । सच्चे मनुष्यका जीवन दुःखमें ही खिल उठता है । सोनेका रंग तपानेपर ही चमकता है ।'

'नित्य हँसमुख रहो, मुखको कभी मलीन न करो, यह निश्चय कर लो कि शोकने तुम्हारे लिये जगत्में जन्म ही नहीं लिया है। आनन्दस्वरूपमें सिवा हँसनेके चिन्ताको स्थान ही कहाँ है ?'

'सर्वत्र परमात्माकी मधुर मूर्ति देखकर आनन्दमें मग्न रहो, जिसको सब जगह उसकी मूर्ति दीखती है वह तो स्वयं आनन्द-स्वरूप ही है।'

'शान्ति तो तुम्हारे अन्दर है। कामनारूप डाकिनीका आवेश उतरा कि शान्तिके दर्शन हुए। वैराग्यके महामन्त्रसे कामनाको भगा दो, फिर देखो, सर्वत्र शान्तिकी शान्त मूर्ति।'

'जहाँ सम्पत्ति है वहीं सुख है, परन्तु सम्पत्तिके भेदसे ही सुखका भी भेद है। दैवी-सम्पत्तिवालोंको परमात्म-सुख है, आसुरीवालोंको आसुरी-सुख और नरकके कीड़ोंको नरक-सुख।'

'किसी भी अवस्थामें मनको व्यथित मत होने दो, याद रक्खो परमात्माके यहाँ कभी भूल नहीं होती और न उसका कोई विधान दयासे रहित ही होता है।'

'परमात्मापर विश्वास रखकर अपनी जीवन-डोरी उसके चरणोंमें सदाके लिये बाँध दो, फिर निर्भयता तो तुम्हारे चरणोंकी दासी बन जायगी।'

'बीते हुएकी चिन्ता न करो, जो अब करना है उसे विचारो और विचारो यही कि बाकीका सारा जीवन केवल उस परमात्माके ही काममें आवे ।'

'धन्य वही है, जिसके जीवनका एक-एक क्षण अपने प्रियतम परमात्माकी अनुकूलतामें बीतता है, चाहे वह अनुकूलता संयोगमें हो या वियोगमें, स्वर्गमें हो या नरकमें, मानमें हो या अपमानमें, मुक्तिमें हो या बन्धनमें ।'

'सदा अपने हृदयको टटोलते रहो, कहीं उसमें काम, क्रोध, वैर, ईर्षा, घृणा, हिंसा, मान और मदरूपी शत्रु घर न कर लें, इनमेंसे जिस किसीको भी देखो, तुरन्त मारकर भगा दो । पर देखना बड़ी बारीक नज़रसे सचेत होकर, ये चुपकेसे अन्दर आकर छिप जाते हैं और मौका पाकर अपना विकराल रूप प्रकट करते हैं ।'

'किसीके भी ऊपरके आचरणोंको देखकर उसे पापी मत मानो । हो सकता है कि उसपर मिथ्या ही दोपारोपण किया जाता हो और वह उससे अपनेको निर्दोष सिद्ध करनेकी परिस्थितिमें न हो । अथवा यह भी सम्भव है कि उसने किसी परिस्थितिमें पड़कर अनिच्छासे कोई बुरा कर्म कर लिया हो, परन्तु उसका अन्तःकरण तुमसे अधिक पवित्र हो ।'

'मकान मेरा है, चूनेके एक-एक कणमें मेरापन भरा हुआ है, उसे बेच दिया, हुंडी हाथमें आ गयी, इसके बाद मकानमें आग लगी। मैं कहने लगा, 'बड़ा अच्छा हुआ, रुपये मिल गये।' मेरापन छूटते ही मकान जलनेका दुःख मिट गया। अब हुंडीके कागजमें मेरापन है, बड़े भारी मकानसे सारा मेरापन निकलकर जरासे कागजके टुकड़ेमें आ गया। अब हुंडीकी तरफ कोई ताक नहीं सकता। हुंडी बेच दी, रुपयोंकी थैली हाथमें आ गयी। इसके बाद हुंडीका कागज भले ही फट जाय, जल जाय, कोई चिन्ता नहीं। सारी ममता थैलीमें आ गयी। अब उसीकी सम्हाल होती है। इसके बाद रुपये किसी महाजनको दे दिये। अब चाहे वे रुपये उसके यहाँसे चोरी चले जायँ, कोई परवा नहीं। उसके खातेमें अपने रुपये जमा होने चाहिये और उस महाजनका फर्म बना रहना चाहिये, चिन्ता है तो इसी बातकी है कि वह फर्म कहीं दिवालिया न हो जाय। इस प्रकार जिसमें ममता होती है उसीकी चिन्ता रहती है। यह ममता ही दुःखोंकी जड़ है। वास्तवमें 'मेरा' कोई पदार्थ नहीं है। मेरा होता तो साथ जाता। पर शरीर भी साथ नहीं जाता। झूँठे ही 'मेरा' मानकर दुःखोंका बोझ लादा जाता है। जिसकी चीज है उसे सौंप दो। जगत्‌के सब पदार्थोंसे मेरापन हटाकर केवल परमात्माको 'मेरा' बना लो। फिर दुःखोंकी जड़ ही कट जायगी!'

'इस संसारमें सभी सरायके मुसाफिर हैं, थोड़ी देरके लिये एक जगह टिके हैं, सभीको समयपर यहाँसे चल देना है, घर-मकान किसीका नहीं है, फिर इनके लिये किसीसे लड़ना क्यों चाहिये ?'

'जगत्में जड़ कुछ भी नहीं है, हमारी जड़-वृत्ति ही हमें जड़के दर्शन करा रही है। असलमें तो जहाँ देखो, वहीं वह परम सुखस्वरूप नित्य चेतन भरा हुआ है। तुम-हम कोई उससे भिन्न नहीं। फिर दुःख क्यों पा रहे हो? सर्वदा-सर्वथा निजानन्दमें निमग्न रहो।'

'जहाँ गुणोंका साम्राज्य नहीं है वहीं चले जाओ। फिर निर्भय और निश्चिन्त हो जाओगे। ये गुण ही दुःखोंकी राशि हैं।'

'पराये पापोंके प्रायश्चित्तकी चिन्ता न करो, पहिले अपने पापोंका प्रायश्चित्त करो।'

'किसीके दोषको देखकर उससे घृणा न करो और न उसका बुरा चाहो। यदि ऐसा न करोगे तो उसका दोष तो न मालूम कब दूर होगा पर तुम्हारे अपने अन्दर घृणा, क्रोध, द्वेष और हिंसाको अवश्य ही स्थान मिल जायगा। उसमें तो एक ही दोष था परन्तु तुममें चार दोष आ जायँगे। हो सकता है, तुम्हारे और उसके दोषोंके नाम अलग-अलग हों।'

'दूसरेके पापोंको प्रकाश करनेके बदले सुहृद बनकर उनको ढँको। सूई छेद करती है पर सूत अपने शरीरका अंश देकर भी उस छेदको भर देता है। इसीप्रकार दूसरेके छिद्रोंको भर देनेके लिये अपना शरीर अर्पण कर दो। पर छिद्र न करो। धागा बनो, सूई नहीं।'

'भगवान्को साथ रखकर काम करनेसे ही पापोंसे रक्षा और कार्यमें सफलता होती है।'

'वैरी अपना मन ही है, इसे जीतनेकी कोशिश करनी चाहिये।'

'न्याय और धर्मयुक्त शत्रुको भी अन्याय और अधर्मयुक्त मित्रसे अच्छा समझना चाहिये।'

'अपनी स्वतन्त्रता बचानेमें दूसरेको परतन्त्र बनाना सर्वथा अनुचित है।'

'अगर आप दूसरेको चुपचाप बैठाकर अपनी बात सुनाना और समझाना पसन्द करते हैं तो इसी तरह उसकी बात सुननेके लिये आपको भी तैयार रहना चाहिये।'

'अगर आप दूसरेको सहनशील देखना चाहते हैं तो पहले खुद सहनशील बनिये।'

'अगर किसी दूसरेके मनके विरुद्ध कोई कार्य करनेमें आप अपना अधिकार मानते हैं तो उसका भी ऐसा ही समझिये ।'

'अपने मनके विरुद्ध शब्द सुनते ही किसीकी नीयतपर सन्देह करना उचित नहीं ।'

'अपने पापोंको देखते रहना और उन्हें प्रकाश कर देना भी पापोंसे छूटनेका एक प्रधान उपाय है ।'

'जो लोग भगवन्नामका सहारा लेकर पाप करते हैं, जो नित्य नये पाप करके प्रतिदिन उन्हें नामसे धो डालना चाहते हैं, उन्हें तो नीच समझो । उनके पाप यमराज भी नहीं धो सकते ।'

'पापोंसे छूटने या भोगोंको पानेके लिये भी भगवन्नामका प्रयोग करना बुद्धिमानी नहीं है । पापका नाश तो प्रायश्चित्त या फलभोगसे ही हो सकता है । तुच्छ नाशवान् भोगोंकी तो परवा ही क्यों करनी चाहिये ? उनके मिलने-न-मिलनेमें लाभ-हानि ही कौन-सा है ?'

'भगवन्नाम तो प्रियसे भी प्रियतम वस्तु है । उसका प्रयोग तो केवल उसीके लिये करना चाहिये ।'

'इस भ्रममें मत रहो कि पाप प्रारब्धसे होते हैं, पाप होते हैं तुम्हारी आसक्तिसे और उनका फल तुम्हें भोगना पड़ेगा ।'

'परमात्मापर विश्वास न होनेसे ही विपत्तियोंका, विषयोंके नाशका और मृत्युका भय रहता है, एवं तभीतक शोक और मोह रहते हैं। जिनको उस भयहारी भगवान्‌में भरोसा है वे शोक-रहित, निर्मोह और नित्य निर्भय हो जाते हैं।'

'मान चाहनेवाले ही अपमानसे डरा करते हैं। मानका बोझा मनसे उतरते ही मन हल्का और निडर बन जाता है।'

'शरीरका नाश होना मृत्यु नहीं है, मृत्यु है वास्तवमें पापों-की वासना!'

'मृत्युको स्वाभाविक बनानेवाला ही सुखसे मर सकता है।'

'जो आत्माको अमर नहीं जानते वे ही मृत्युसे काँपा करते हैं।'

'किसीको गाली न दो, वृथा न बोलो, चुगली न करो, असत्य न बोलो, सदा कम बोलो और प्रत्येक शब्दको सावधानीसे उच्चारण करो।'

'दूसरोंकी त्रुटियों और कमजोरियोंको सहन करो, तुममें भी बहुत-सी त्रुटियाँ हैं जिन्हें दूसरे सहते हैं।'

'किसीको पापी समझकर मनमें अभिमान न करो कि मैं पुण्यात्मा हूँ। जीवनमें न मालूम कब कैसा कुअवसर आ जाय और तुम्हें भी उसीकी भाँति पाप करने पड़ें।'

'यदि वार-वार आत्मनिरीक्षण न कर सको तो कम-से-कम दिनमें दो वार सुवह और शाम अपना अन्तर अवश्य टटोल लिया करो । तुम्हें पता लगेगा कि दिनभरमें तुम ईश्वरके और जीवोंके प्रति कितने अधिक अपराध करते हो ।'

'लोग धनियोंके वाहरी ऐश्वर्यको देखकर समझते हैं कि ये वड़े सुखी हैं, हम भी ऐसे ही ऐश्वर्यवान् हों तव सुखी हों, पर वे भूलते हैं, जिन्होंने धनियोंका हृदय टटोला है उन्हें पता है कि धनी, दरिद्रोंकी अपेक्षा कम दुखी नहीं हैं। दु:खके कारण और रूप अवश्य ही भिन्न-भिन्न हैं ।'

'धनकी इच्छा कभी न करो, इच्छा करो उस परम धन परमात्माकी जो एक वार मिल जानेपर कभी जाता नहीं। धनमें सुख नहीं है । क्योंकि धन तो आज है कल नहीं । सच्चा सुख परमात्मामें है जो सदा वना ही रहता है.।'

'प्रतिदिन सुवह और शाम मन लगाकर भगवान्‌का स्मरण अवश्य किया करो, इससे चौवीसों घण्टे शान्ति रहेगी और मन वुरे संस्कारोंसे वचेगा ।'

'धन सम्पत्ति या मित्रोंको पाकर अभिमान न करो, जिस परमात्माने तुम्हें यह सव कुछ दिया है उसका उपकार मानो ।'

'भक्त वही है जिसका अन्तःकरण समस्त पाप-तापोंसे रहित होकर केवल अपने इष्टदेव परमात्माका नित्य-निकेतन बन गया है।'

'भक्तका हृदय ही जब पापोंसे शून्य होता है तब उसकी शारीरिक क्रियाओंमें तो पापको स्थान ही कहाँ है? जो रात-दिन पापमें लगे रहकर भी अपनेको भक्त समझते हैं वे या तो जगत्‌को ठगनेके लिये ऐसा करते हैं अथवा स्वयं अपनी विवेकहीन बुद्धिसे ठगे गये हैं।'

'भक्त और साधु बनना चाहिये, कहलाना नहीं चाहिये। जो कहलानेके लिये भक्त बनना चाहते हैं वे पापोंसे ठगे जाते हैं, ऐसे लोगोंपर सबसे पहला आक्रमण दम्भका होता है।'

'भक्ति अपने सुखके लिये हुआ करती है, दुनियाँको दिखलानेके लिये नहीं,जहाँ दिखलानेका भाव है वहीं कृत्रिमता है।'

'पापी मनुष्य ही अपने पापोंका दोष हल्का करने या पापोंमें प्रवृत्त होनेके लिये शास्त्रोंका मनमाना अर्थ कर उससे अपना मनोरथ सिद्ध किया चाहते हैं। भगवान् श्रीकृष्णमें कलङ्क नहीं है, पापियोंकी पापवासना ही उनमें कलङ्कका आरोप करती है।'

'श्रीकृष्णका उदाहरण देकर पाप करनेवाले ही कलङ्की हैं, श्रीकृष्णका निर्मल चरित्र तो नित्य ही निष्कलङ्क है।'

'भगवान्‌की ओरसे कृत्रिम मनुष्यको कोपका और अकृत्रिमको करुणाका प्रसाद मिलता है। कोपका प्रसाद जलाकर, तपाकर उसे शुद्ध करता है और करुणाका प्रसाद तो उस शुद्ध हुए पुरुषको ही मिलता है।'

'जो भगवान्‌का भक्त बनना चाहता है उसे सबसे पहले अपना हृदय शुद्ध करना चाहिये और नित्य एकान्तमें भगवान्‌से यह कातर प्रार्थना करनी चाहिये कि 'हे भगवन्! ऐसी कृपा करो जिससे मेरे हृदयमें तुम्हें हर-घड़ी हाजिर देखकर तनिक-सी पापवासना भी उठने और ठहरने न पावे, तदनन्तर उस निर्मल हृदयदेशमें तुम अपना स्थिर आसन जमा लो और मैं पल-पलमें तुम्हें निरख-निरखकर निरतिशय आनन्दमें मग्न होता रहूँ।'

'फिर भगवन्! तुम्हारे लिये मैं सारे भोगोंको विषम रोग समझकर उनका भी त्याग कर दूँ और केवल तुम्हें लेकर ही मौज करूँ। इन्द्र और ब्रह्माका पद भी उस मौजके सामने तुच्छ—अति तुच्छ हो जाय।'

'फिर स्वामी शङ्कराचार्यकी तरह मैं भी गाया करूँ—

सत्यपि भेदापगमे नाथ ! तवाहं न मामकीनस्त्वम् ।
सामुद्रोहि तरङ्गः क्वचन समुद्रो न तारङ्गः ॥

'बाहरी पवित्रताकी अपेक्षा हृदयकी पवित्रता मनुष्यके चरित्रको उज्ज्वल बनानेमें बहुत अधिक सहायक होती है । मनुष्यको काम, क्रोध, हिंसा, वैर, दम्भ आदिके दुर्गन्धभरे कूड़ेको बाहर फेंककर हृदयको सदा साफ रखना चाहिये ।'

'बाहरसे निर्दोष कहलानेका प्रयत्न न कर मनसे निर्दोष बनना चाहिये । मनसे निर्दोष मनुष्यको दुनियाँ दोषी बतलावे तो भी कोई हानि नहीं, परन्तु मनमें दोष रखकर बाहरसे निर्दोष कहलाना हानिकारक है ।'

'निर्दोष सत्कार्यको किसी भय, सङ्कोच या अल्प-मतके कारण कभी छोड़ना नहीं चाहिये । कार्यकी निर्दोषता, उसकी उपकारिता और तुम्हारी श्रद्धा, नेकनीयत तथा टेकके प्रभावसे आज नहीं तो कुछ समय बाद लोग उस कार्यको जरूर अच्छा समझेंगे ।'

'अपने विरोधीको अनुकूल बनानेका सबसे अच्छा उपाय यही है कि उसके साथ सरल और सच्चा प्रेम करो । वह तुमसे द्वेष करे, तुम्हारा अनिष्ट करे तब भी तुम तो प्रेम ही करो । प्रतिहिंसाको स्थान दिया तो जरूर गिर जाओगे ।'

'याद रखना चाहिये कि संसारके सुखोंकी अपेक्षा परमात्म-सुख अत्यन्त विलक्षण है । अतः संसार-सुखके लिये परमात्म-सुखकी चेष्टामें कभी बाधा नहीं पहुँचानी चाहिये ।'

'कर्तव्यमें प्रमाद न करना ही सफलताकी कुञ्जी है और उसीपर परमात्माकी कृपा होती है, आलसी और कर्तव्यविमुख लोग उसके योग्य नहीं ।'

'किसीके मुँहसे कोई बात अपने विरुद्ध सुनते ही उसे अपना विरोधी मत मान बैठो, विरोधका कारण ढूँढो और उसे मिटानेकी सच्चे हृदयसे चेष्टा करो, हो सकता है तुममें ही कोई दोष हो, जो तुम्हें अबतक न दीख पड़ा हो अथवा वह ही बिना बुरी नीयतके ही किसी परिस्थितिके प्रवाहमें बह गया हो। ऐसी स्थितिमें शान्ति और प्रेमसे काम लेना चाहिये ।'

' अपने हृदयको सदा टटोलते रहना ही साधकका कर्तव्य है, उसमें घृणा,द्वेष, हिंसा, वैर, मान, अहङ्कार, कामना आदि अपना डेरा न जमा लें ।बुरा कहलाना अच्छा है परन्तु अच्छा कहलाकर बुरा बने रहना बहुत ही बुरा है ।'

भूल जाओ

'तुम्हारेद्वारा किसी प्राणीकी कभी कोई सेवा हो जाय तो यह अभिमान न करो कि मैंने उसका उपकार किया है । यह

निश्चय समझो कि उसको तुम्हारेद्वारा बनी हुई सेवासे जो सुख मिला है सो निश्चय ही उसके किसी शुभ कर्मका फल है, तुम तो उसमें केवल निमित्त बने हो; ईश्वरका धन्यवाद करो जो उसने तुम्हें किसीको सुख पहुँचानेमें निमित्त बनाया और उस प्राणीका उपकार मानो जो उसने तुम्हारी सेवा स्वीकार की। वह यदि तुम्हारा उपकार माने या कृतज्ञता प्रकट करे तो मन-ही-मन सकुचाओ और भगवान्से प्रार्थना करो कि 'हे भगवन्, तुम्हारे कार्यमें मुझे यह झूठी बड़ाई क्यों मिल रही है' और उससे नम्रतापूर्वक कहो कि 'भाई! तुम ईश्वरके प्रति कृतज्ञ होओ, जिसने तुम्हारे लिये ऐसा विधान किया और पुनः-पुनः सत्कर्म करते रहो, जिनके फलस्वरूप तुम्हें बार-बार सुख ही मिले। मैं तो निमित्तमात्र हूँ, मेरी बड़ाई करके मुझे अभिमानी न बनाओ।'

'उसपर कभी अहसान न करो कि मैंने तुम्हारा उपकार किया है, अहसान करोगे तो उसपर भारी बोझ पड़ जायगा। वह दुखी होगा, आइन्दे तुम्हारी सेवा स्वीकार करनेमें उसे संकोच होगा। उसके अहसान न माननेसे तुम्हें दुःख होगा, तुम उसे कृतघ्न समझोगे, परिणाममें तुम्हारे और उसके दोनोंके हृदयोंमें द्वेष उत्पन्न हो जायगा। इस बातको भूल ही जाओ कि मैंने किसीकी सेवा की है।'

याद रक्खो

'तुम्हारेद्वारा किसी प्राणीका कभी कुछ भी अनिष्ट हो जाय या उसे दुःख पहुँच जाय तो इसके लिये बहुत ही पश्चात्ताप करो। यह खयाल मत करो कि 'उसके भाग्यमें तो दुःख बदा ही था, मैं तो निमित्तमात्र हूँ, मैं निमित्त न बनता तो उसको कर्मका फल ही कैसे मिलता, उसके भाग्यसे ही ऐसा हुआ है, मेरा इसमें क्या दोष है।' उसके भाग्यमें जो कुछ भी हो, इससे तुम्हें मतलब नहीं, तुम्हारे लिये ईश्वर और शास्त्रकी यही आज्ञा है कि तुम किसीका अनिष्ट न करो। तुम किसीका बुरा करते हो तो अपराध करते हो और इसका दण्ड तुम्हें अवश्य भोगना पड़ेगा; उसे कर्म-फल भुगतानेके लिये ईश्वर आप ही कोई दूसरा निमित्त बनाते, तुमने निमित्त बनकर पापका बोझ क्यों उठाया ?'

'याद रक्खो कि तुम्हें जब दूसरेके द्वारा जरा-सा भी कष्ट मिलता है, तब तुम्हें कितना दुःख होता है, इसी प्रकार उसे भी होता है, इसलिये कभी भूलकर भी किसीके अनिष्टकी भावना ही न करो; ईश्वरसे सदा यह प्रार्थना करते रहो कि 'हे भगवन्! मुझे ऐसी सद्बुद्धि दो जिससे मैं तुम्हारी सृष्टिमें तुम्हारी किसी भी सन्तानका अनिष्ट

करने या उसे दुःख पहुँचानेमें कारण न बनूँ ।' सदैव सबकी सच्ची हितकामना करो और यथासाध्य सेवा करनेकी वृत्ति रक्खो। कोढ़ी, अपाहिज, दुखी-दरिद्रको देखकर यह समझकर कि 'यह अपने बुरे कर्मोंका फल भोग रहा है, जैसा किया था वैसा ही पाता है,–उसकी उपेक्षा न करो, उससे घृणा न करो और रूखा व्यवहार करके उसे कभी कष्ट न पहुँचाओ। वह चाहे पूर्वका कितना ही पापी क्यों न हो, तुम्हारा काम उसके पाप देखनेका नहीं है, तुम्हारा कर्तव्य तो अपनी शक्तिके अनुसार उसकी भलाई करना तथा उसकी सेवा करना ही है। यही भगवान्‌की तुम्हारे प्रति आज्ञा है। यह न कर सको तो कमसे कम इतना तो जरूर खयाल रक्खो, जिससे तुम्हारे द्वारा न तो किसीको कुछ भी कष्ट पहुँचे और न किसी-का अनिष्ट ही हो। तुम किसीसे घृणा करके उसे दुःख पहुँचाते हो तो पाप करते हो, जिसका बुरा फल तुम्हें जरूर भोगना पड़ेगा।'

'यदि कभी किसी जीवको तुम्हारेद्वारा कुछ भी कष्ट पहुँच जाय तो, उससे क्षमा माँगो; अभिमान छोड़कर उसके सामने हाथ जोड़कर उससे दया-भिक्षा चाहो, हजार आदमियोंके सामने भी अपना अपराध स्वीकार करनेमें संकोच न करो, परिस्थिति बदल जानेपर भी अपनी बात न बदलो; उसे सुख पहुँचाकर, उसकी सेवा करके, अपने प्रति उसके हृदयमें सहानुभूति और

प्रेम उत्पन्न कराओ । यह खयाल मत करो कि 'कोई मेरा क्या कर सकता है ? मैं सब तरहसे बलवान् हूँ; धन, विद्या, पद आदिके कारण बड़ा हूँ । वह कमज़ोर, अशक्त मेरा क्या बिगाड़ सकेगा ?' ईश्वरके दरबारमें कोई छोटा-बड़ा नहीं है, वहाँके न्यायपर तुम्हारे धन, विद्या और पदोंका कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा । कमज़ोर गरीबकी दुःखभरी आह तुम्हारे अभिमानको चूर्ण करनेमें समर्थ होगी । तुम्हारे द्वारा दूसरेके अनिष्ट होनेकी छोटी-से-छोटी घटना भी तुम्हारे हृदयमें सदा शूलकी तरह चुभनी चाहिये । तभी तुम्हारा हृदय शीतल होगा और तुम पापमुक्त हो सकोगे ।'

भूल जाओ

'दूसरेके द्वारा तुम्हारा कभी कोई अनिष्ट हो जाय तो उसके लिये दुःख न करो, उसे अपने पहले किये हुए बुरे कर्मका फल समझो; यह विचार कभी मनमें मत आने दो कि 'अमुकने मेरा अनिष्ट कर दिया है' यह निश्चय समझो कि ईश्वरके दरबारमें अन्याय नहीं होता, तुम्हारा जो अनिष्ट हुआ है या तुमपर जो विपत्ति आयी है, वह अवश्य ही तुम्हारे पूर्वकृत कर्मका फल है, वास्तवमें बिना कारण तुम्हें कोई कदापि कष्ट नहीं पहुँचा सकता । न यही सम्भव है कि कार्य पहले हो और कारण पीछे बने; इसलिये तुम्हें जो कुछ भी दुःख प्राप्त होता है, सो अवश्य ही तुम्हारे अपने

कर्मोंका फल है; ईश्वर तो तुम्हें पापमुक्त करनेके लिये दयावश न्यायपूर्वक फलका विधान करता है। जिसके द्वारा तुम्हें दुःख पहुँचा है उसे तो केवल निमित्त समझो, वह बेचारा अज्ञान और मोहवश निमित्त बन गया है; उसने तो अपने ही हाथों अपने पैरोंपर कुल्हाड़ी मारी है और तुम्हें कष्ट पहुँचानेमें निमित्त बनकर अपने लिये दुःखोंको निमन्त्रण दिया है; यह तो समझते ही होंगे कि जो स्वयं दुःखोंको बुलाता है वह बुद्धिमान् नहीं है, भूला हुआ है, अतः वह दयाका पात्र है। उसपर क्रोध न करो, बदलेमें उसका बुरा न चाहो, कभी उसकी अनिष्ट-कामना न करो, बल्कि भगवान्‌से प्रार्थना करो कि 'हे भगवन्! इस भूले हुए जीवको सन्मार्गपर चढ़ा दो, इसकी सद्बुद्धिको जाग्रत कर दो, इसका भ्रमवश किया हुआ अपराध क्षमा करो।'

'सम्भव है कि उससे किसी परिस्थितिमें पड़कर भ्रमसे ऐसा काम बन गया, जिससे तुम्हें कष्ट पहुँचा हो, परन्तु अब वह अपने कियेपर पछताता हो, उसके हृदयमें पश्चात्तापकी आग जल रही हो और वह संकोचमें पड़ा हुआ हो, ऐसी अवस्थामें तुम्हारा कर्तव्य है कि उसके साथ प्रेम करो, अच्छे-से-अच्छा व्यवहार करो। उससे स्पष्ट कह दो कि 'भाई! तुम पश्चात्ताप क्यों कर रहे हो? तुम्हारा इसमें दोष ही क्या है? मुझे जो कष्ट

प्राप्त हुआ है सो मेरे पूर्वकृत कर्मका फल है। तुमने तो मेरा उपकार किया है जो मुझे अपना कर्मफल भुगतानेमें कारण बने हो, संकोच छोड़ दो।' तुम्हारे सच्चे हृदयकी इन सच्ची बातोंसे उसके हृदयकी आग बुझ जायगी, वह चेतेगा, आइन्दे किसीका बुरा न करेगा। यदि वास्तवमें कुबुद्धिवश उसने जानकर ही तुम्हें कष्ट पहुँचाया होगा और इस बातसे उसके मनमें पश्चात्तापके बदले आनन्द होता होगा, तो तुम्हारे अच्छे बर्ताव और प्रेम-व्यवहारसे उसके हृदयमें पश्चात्ताप उत्पन्न होगा, तुम्हारी महत्ताके सामने उसका सिर आप ही झुक जायगा। उसका हृदय पवित्र हो जायगा। यह निश्चय है। कदाचित् ऐसा न हो तो भी तुम्हारा कोई हर्ज नहीं; तुम्हारा अपना मन तो सुन्दर प्रेमके व्यवहारसे शुद्ध और शीतल रहेगा ही!'

'उसके प्रति द्वेष कभी न करो, द्वेष करोगे तो तुम्हारे मनमें वैर, हिंसा आदि अनेक नये-नये पापोंके संस्कार पैदा हो जायँगे, उसका मन भी शुद्ध नहीं रहेगा, उसमें पहले वैर न रहा होगा तो अब तुम्हारे असद्व्यवहारसे पैदा हो जायगा, द्वेषाग्निसे दोनोंका हृदय जलेगा, वैर-भावना परस्पर दोनोंको दुखी करेगी और पापपंकमें डालेगी। अतएव इस बातको सर्वथा भूल जाओ कि अमुकने कभी मेरा कोई अनिष्ट किया है।'

× × ×

याद रक्खो

'दूसरेके द्वारा तुम्हारा तनिक-सा भी उपकार या भला हो अथवा तुम्हें सुख पहुँचे तो उसका हृदयसे उपकार मानो, उसके प्रति कृतज्ञ बनो। यह मत समझो कि 'यह काम मेरे प्रारब्धसे हुआ है, इसमें उसका मेरे ऊपर क्या उपकार है, वह तो निमित्तमात्र है।' बल्कि यह समझो कि उसने निमित्त बनकर तुमपर बड़ी ही दया की है। उसके उपकारको जीवनभर स्मरण रक्खो, स्थिति बदल जानेपर उसे भूल न जाओ और सदा उसकी सेवा करने और उसे सुख पहुँचानेकी चेष्टा करो; काम पड़नेपर हजारों आदमियोंके सामने भी उसका उपकार स्वीकार करनेमें संकोच न करो; ऐसा करनेसे परस्पर प्रेम बढ़ेगा, आनन्द और शान्तिकी वृद्धि होगी, लोगोंमें दूसरोंको सुख पहुँचानेकी प्रवृत्ति और इच्छा अधिकाधिक उत्पन्न होगी; सहानुभूति और सेवाके भाव बढ़ेंगे। याद रक्खो कि उपकार या सेवा करनेवालेके प्रति कृतज्ञ होकर मनुष्य जगत्की एक बड़ी सेवा करता है, क्योंकि इससे उपकार करनेवालेके चित्तको सुख पहुँचता है, उसका उत्साह बढ़ जाता है और उसके मनमें उपकार या सेवा करनेकी भावना और भी प्रबल हो उठती है। कृतज्ञके प्रति परमात्माकी प्रसन्नता और कृतघ्नके प्रति कोप होता है। इससे कृतज्ञ बनो और उपकारीके उपकारको कभी न भूलो।'

'हमें जो दूसरोंमें दोष दिखलायी देते हैं, इसका प्रधान कारण अक्सर हमारे चित्तकी दूषित वृत्ति ही होता है। अपने चित्तको निर्दोष बना लो, फिर जगत्‌में दोषी बहुत ही कम दीखेंगे।'

'अपने दोषोंको देखनेकी आदत डालो, बड़ी ही सावधानीसे अपने मनके दोषोंको देखो, तुम्हें पता लगेगा कि तुम्हारा मन दोषोंसे भरा है, फिर दूसरोंके दोष देखनेकी तुम्हें फ़ुरसत ही नहीं मिलेगी।'

'मनके पैदा होनेवाले प्रत्येक संकल्पके साथ राग या द्वेष रहता है, उसीके अनुसार वह सुख या दुःखका अनुभव करता है। तथा इसी रागद्वेषके कारण दूसरोंमें गुण या दोष दीखते हैं। जिसमें राग होता है, उसके दोष भी गुण दीखते हैं और जिसमें द्वेष होता है, उसका गुण भी दोष दीखता है। राग-द्वेषका चश्मा उतरे बिना किसीके यथार्थ स्वरूपकी जानकारी नहीं हो सकती।'

'मनमें उठनेवाली प्रत्येक स्फुरणाके द्रष्टा बन जाओ, स्फुरणाओंका शीघ्र ही नाश हो जायगा, मनको वशमें करनेका यह बहुत सुन्दर तरीका है। इसी प्रकार राग-द्वेषके द्रष्टा बननेसे राग-द्वेषके नष्ट होनेमें सहायता मिलेगी।'

'जीवन बहुत थोड़ा है, सबसे प्रेमपूर्वक हिलमिल कर चलो, सबसे अच्छा बर्ताव करो, अमृतका विस्तार कर जाओ, विषकी बूँद भी कहीं न डालो। तुम्हारा प्रेमपूर्ण व्यवहार अमृत है और द्वेषपूर्ण व्यवहार ही विष है।'

'घण्टे भरके लिये भी कोई आदमी तुमसे मिले तो अपने प्रेमपूर्ण सरल व्यवहारसे उसके हृदयमें अमृत भर दो, सावधान रहो, तुम्हारे पाससे कोई विष न ले जाय। हृदयसे विषको सर्वथा निकालकर अमृत भर लो और पद-पदपर केवल वही अमृत वितरण करो।'

'वर्ण, जाति, विद्या, धन या पदमें बड़े हो, इसीलिये अपनेको बड़ा मत समझो, याद रक्खो, सबमें एक ही राम रम रहा है। छोटा-बड़ा व्यवहार है न कि आत्मा।'

'व्यवहारमें सब प्रकारकी समता असंभव और हानिकर है, इससे व्यवहारमें आवश्यकतानुसार विषमता रखते हुए भी मनमें समता रक्खो, आत्मरूपसे सबको एक-सा समझो, किसीको अपनेसे छोटा समझकर उससे घृणा न करो, न अपनेमें बड़प्पनका अभिमान ही आने दो।'

'बड़ा वही है, जो अपनेको सबसे छोटा मानता है। यह मन्त्र सदा स्मरण रक्खो।'

'ईश्वर सदा-सर्वदा तुम्हारे साथ हैं,इस बातको कभी न भूलो, ईश्वरको साथ जाननेका भाव तुम्हें निर्भय और निष्पाप बनानेमें बड़ा मददगार होगा। यह भाव नहीं है, सचमुच ही ईश्वर सदा सबके साथ है।'

'ईश्वरके अस्तित्वपर विश्वास बढ़ाओ,जिस दिन ईश्वरकी सत्ता-का पूर्ण निश्चय हो जायगा, उसदिन तुम पापरहित और ईश्वरके सम्मुख हुए बिना नहीं रह सकोगे।'

'अपनेको सदा बलवान, नीरोग, शक्तिसम्पन्न और पवित्र बनाओ, ऐसा बनानेके लिये यह निश्चय करना होगा कि मैं वास्तवमें ऐसा ही हूँ। असलमें बात भी यही है। तुम शरीर नहीं, आत्मा हो; आत्मा सदा ही बलवान्, नीरोग, शक्तिसम्पन्न और पवित्र है। देहको 'मैं' माननेसे ही निर्बलता, बीमारी, अशक्ति और अपवित्रता आती है।'

'देहको 'मैं' मानकर कभी अपनेको बलवान, नीरोग, शक्ति-सम्पन्न और पवित्र मत समझो, यों समझोगे तो झूठा अभिमान बढ़ेगा। क्योंकि देहमें ये गुण हैं ही नहीं।'

'देहाभिमान ही पाप है और यही सबसे बड़ी अपवित्रता है। या तो अपनेको ईश्वरका पवित्र अभिन्न अंश आत्मा मानो,

या उस प्राणेश्वर प्रभुका दास मानो, आत्मा तो पवित्र और बलवान् है ही, प्रभुका दास भी स्वामीकी सत्तासे, मालिकके बलसे मालिकके समान ही पवित्र और बलवान् बन जाता है।'

'ईश्वरकी कभी सीमा न बाँधो, वह अनिर्वचनीय है, साकार भी है, निराकार भी है तथा दोनोंसे विलक्षण भी है। भक्त उसे जिस भावसे भजता है, वह उसी भावमें प्रत्यक्ष है, यही तो ईश्वरत्व है।'

'ईश्वरका स्वरूप या सृष्टिरचनाके सिद्धान्तका निर्णय करनेके बखेड़ेमें न पड़कर श्रद्धा-भक्तिपूर्वक किसी भी एक मार्गको पकड़-कर आगे बढ़ना शुरू कर दो। ज्यों-ज्यों आगे बढ़ोगे, रहस्य आप ही खुलता जायगा। चलना शुरू न कर, व्यर्थ ही निर्णयमें लगे रहोगे तो किसी-न-किसीके मतके आग्रही बनकर जीवनको लड़ाई-झगड़ेमें ही व्यर्थ खो दोगे, तत्त्वकी प्राप्ति शास्त्रार्थसे नहीं होती, गुरुदेवकी सेवा और उनके बतलाये हुए मार्गपर श्रद्धा-पूर्वक चलनेसे ही होती है।'

'भोगोंमें वैराग्य करो, वैराग्यके लिये चार बातें आवश्यक हैं, जगत्‌में रमणीयता, सुख, स्नेह और सत्ताका त्याग। परमात्मामें राग करो, उसमें ये चारों बातें पूर्ण हैं, इनका अनुभव करो।'

'कुसंगसे सदा बचना चाहिये और सत्संगका आश्रय लेना चाहिये। विषयी पुरुषोंका संग तो बहुत ही हानिकर है। चेतन-की तो बात ही क्या है। मनको लुभानेवाली और इन्द्रियोंको आकर्षित करनेवाली जड़ भोग्यवस्तुओंका संग भी त्याज्य है।'

'ईश्वरके विरोधकी बात कभी भूलकर भी न कहनी चाहिये, न सुननी चाहिये, यह सबसे बड़ा अपराध है।'

'मनसे राग-द्वेषको निकालकर अनासक्तभावसे इन्द्रियोंके द्वारा विषयोंका भोग करना चाहिये न कि रागद्वेषयुक्त होकर तथा इन्द्रियोंके गुलाम बनकर; इन्द्रियोंको गुलाम बनाकर उनसे काम लो, उनके गुलाम बनकर उनके कहनेमें न चलो।'

'साधकके लिये सबसे बड़ा प्रतिबन्धक कीर्तिकी चाह है। धन और स्त्रीका छोड़ना सहज है परन्तु कीर्तिका लोभ छोड़ना बहुत ही मुश्किल है।'

'सुख तुम्हारे मनमें है, न कि किसी कार्य या वस्तुविशेषमें; चित्त शान्त है तो सुख है, नहीं तो दुःख-ही-दुःख है। चित्तकी शान्तिके लिये जगत्की कामनाओंका त्याग जरूरी है।'

'जो कुछ भी कार्य करो, भगवान्की सेवा समझकर उन्हींके लिये करो, दयानिधान प्रभुकी अपने ऊपर परम कृपा समझो,

उनकी कृपापर पूर्ण विश्वास रक्खो और तुम्हारे कार्यका जो कुछ भी परिणाम हो, उसे मंगलमय भगवान्‌की इच्छा समझकर आनन्दसे सिर चढ़ाओ !'

'जीवन बीता जा रहा है, हम पल-पलमें मृत्युकी ओर बढ़ रहे हैं, बहुत ही जल्दी जीवन खतम होगा, यह समझकर अगली यात्राके लिये यहाँका काम निपटाकर सदा कमर कसे तैयार रहो, जगत्‌की आसक्ति सर्वथा त्यागकर परमात्मासे मिलनेकी तीव्र इच्छा करना ही कमर कसकर तैयार होना है ।'

'जगत्‌में नाटकके पात्रकी तरह रहो, अपना पार्ट पूरा करनेमें कभी चूको मत और किसी भी पदार्थको कभी अपना समझो मत। पार्ट करनेमें चूकना निमकहरामी और किसीको अपना मानना बेईमानी है। समझो नाटक परन्तु लोकदृष्टिमें अभिनय करो सत्य-सा समझकर ही।'

'गुण-दोष सबमें रहते हैं, भूल सभीसे होती है, यदि तुम किसीका कोई काम देखते ही उसमें दोष ढूँढ़ने लगोगे तो तुम्हारी वृत्ति आगे चलकर बहुत दूषित हो जायगी, तुम्हें अच्छे-से-अच्छे कामोंमें भी दोष ही दीखेगा। खुद जलोगे और दूसरोंको जलाओगे। इसके बदलेमें यदि तुम गुण देखोगे तो तुम्हारी वृत्ति सात्त्विक होगी। प्रसन्नता बढ़ेगी। शान्ति मिलेगी। सबमें गुण देखनेकी आदत डालो, देखो कितना आनन्द मिलता है।'

'किसीकी भूल न ढूँढ़ो, भूल दीखे तो उसे भूल जाओ, उसके अच्छे हेतु, परिश्रम और लगनकी हृदयसे कद्र करो; उसके कार्यमें गुणोंको ढूँढो। भलाईकी खोज करो। तुम गुणवान् और भले आदमी बन जाओगे।'

'इज़्ज़तदार बनो। सच्ची इज़्ज़त क्या है पहले इस बातको जानो। अन्यायसे धन कमाकर भी धनके बलसे मनुष्य इस दुनियामें इज़्ज़तदार कहला सकता है, परन्तु परमात्माके यहाँ उसकी कोई इज़्ज़त नहीं है, यहाँ दरिद्रतासे जीवन बितानेवाला संसारकी नज़रसे गिरा हुआ मनुष्य भी यदि धर्मके पथसे नहीं डिगता, तो वही सच्चा इज़्ज़तदार है।'

'मान-बड़ाईके मोलमें धर्मको न दो, मान-बड़ाईको पैरोंतले कुचल डालो पर धर्मको बचाओ।'

'धन, मकान, मनुष्य, शरीर आदिके बलपर न इतराओ, यह सारा बल पलभरमें नष्ट हो सकता है। सच्चा बल ईश्वरीय-बल है, उसीको अर्जन करो।'

'जहाँ अस्पताल और वैद्य डाक्टर ज्यादा हैं, समझो कि वहाँके मनुष्योंका शारीरिक पतन हो चुका है। जहाँ वकील ज्यादा हों और कचहरीमें भीड़ रहती हो, समझो कि वहाँके मनुष्योंकी इमानदारी प्रायः नष्ट हो चुकी है और जहाँ गन्दा साहित्य बिकता हो, समझो कि वहाँ लोगोंका नैतिक पतन हो चुका है।'

'केवल दवा और अस्पतालोंसे ही रोगोंका समूल नाश नहीं होता। रोगोंका समूल नाश तो इन्द्रियसंयम और मनकी शुद्धि होनेपर होता है। इन्द्रिय-संयम और मन-शुद्धि ऐसी दवा है कि इनसे शारीरिक स्वास्थ्य तो मिलता ही है, पारमार्थिक स्वास्थ्यकी भी प्राप्ति होती है। अतः इन्द्रियोंके वशमें करने और मनको शुद्ध बनानेका निरन्तर प्रयत्न करते रहो।'

'सत्संगसे इन्द्रियसंयम और मनकी शुद्धि होती है। अतः कुसंगका त्यागकर सत्संगका सेवन करो।'

'वकील और कचहरियोंसे ही झगड़ोंकी जड़ नहीं कटती, झगड़ोंकी जड़ काटनेके लिये तो सबसे अधिक जरूरी बात है, ईमानदारी। यदि मनुष्य दूसरेका हक मारनेकी इच्छा छोड़ दे तो झगड़ा हो ही नहीं।'

'भगवान्‌के प्रेमको प्राप्त करना ही मनुष्यजीवनका मुख्य उद्देश्य है, इस बातको स्मरण रखना चाहिये। भगवत्प्रेमकी प्राप्ति भगवान्‌की कृपासे ही होती है, किसी साधनसे नहीं।'

'साधनका अहंकार कभी न रक्खो, भगवान्‌की आज्ञानुसार भगवदर्थ भजन-ध्यान करनेमें प्राणपणसे लगे रहो, परन्तु अपने हृदयमें साधकपनका अभिमान पैदा न होने दो।'

'भगवान्पर दृढ़ विश्वास रक्खो, तुम्हारे मनमें जितना-जितना भगवान्का विश्वास अधिक होगा, तुम उतना ही भगवान्की ओर आगे बढ़ सकोगे।'

'सच्चे भक्तोंका एकमात्र बल भगवान्का भरोसा ही है।' वे पूर्ण निर्भरताके साथ भगवान्के होकर अपना जीवन केवल भगवान्के चिन्तनमें ही लगाया करते हैं।'

'जितना भरोसा बढ़ेगा, उतनी ही भगवत्-कृपाकी झाँकी प्रत्यक्ष दीखेगी।'

'यह याद रक्खो कि भगवान्के समान सुहृद्, दयालु, प्रेमी, सुन्दर, ऐश्वर्यवान् और कोई भी नहीं है और वह तुम्हारा नित्य साथी है। तुम्हें हृदयसे लगानेके लिये सदा ही हाथ फैलाये तैयार है।'

'संसारमें जो कुछ देखते हो सो सब उसीका है, उसीका नहीं, वही सब कुछ बना हुआ है। यह जो कुछ हो रहा है सो सब उसकी लीला है। वह आप ही अपनेमें खेल कर रहा है।'

'सर्वभावसे उसकी शरण हुए बिना यह रहस्य समझमें नहीं आवेगा। सब प्रकारके अभिमानको छोड़कर उसके शरण हो जाओ, उसकी कृपापर दृढ़ भरोसा रक्खो, सारी चिन्ताओंको छोड़कर सब कुछ उसके चरणोंपर चढ़ा दो।'

'उसके चिन्तनमें चित्त रक्खो, उसकी प्रत्येक दैनको सिर चढ़ाकर आनन्दसे स्वीकार करो, उसकी हरेक आज्ञाका हृदयसे पालन करो और उसपर अनन्य निर्भर होकर माँगनेकी वासनाको ही त्याग दो।'

'उससे माँगना ही ठगाना है, कारण वह परम सुहृद भगवान् हमारा जितना हित सोच सकता है, उतना सोचनेके लिये हमारी बुद्धि कभी समर्थ ही नहीं है।'

'एक दिन अवश्य मर जाना है, इस बातको भूलो मत, मृत्युके भयानक दृश्यको याद रक्खो, मरते हुए मनुष्यके शरीरकी घृणित दशाका स्मरण करो, उसके दुःखसे भरे हुए निराश नेत्रोंकी भयानकताका ध्यान करो, एकदिन तुम्हारी भी यही दशा होनेवाली है।'

'मृत्युकी भीषणतासे एकबार भय होगा, विषाद होगा, जगत्में अन्धकार दीखेगा, निराशा होगी, पर इससे घबराओ मत, यह निराशा ही तुम्हारे परम सुखका कारण होगी, इसीमें तुम परमात्माकी झाँकी कर सकोगे। *'नैराश्यं परमं सुखम्'*

'भगवान्पर कभी अविश्वास न करो, यह सबसे बड़ा पाप है।'

'भगवान्के नामपर विश्वास रक्खो, याद रक्खो, नामके बारेमें सन्तोंका एक-एक वचन सच्चा है। नामकी शरण लेकर परीक्षा कर देखो।'